卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

श्रीसरयू लहरी





:: प्रणेता ::

धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

(चित्रकूटधाम)

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

श्रीसरयू लहरी

प्रणेता

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य
जी महाराज (चित्रकूटधाम)

प्रकाशक

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास

आमोदवन, चित्रकूटधाम, सतना (म. प्र.)

● प्रकाशक

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास

आमोदवन, चित्रकूटधाम

जनपद–सतना (म० प्र०)

● प्रथम संस्करण—आद्यजगद्गुरु रामानन्दाचार्य ७०० वीं जयन्ती

● न्यौछावर—दस रुपये मात्र

● मुद्रक :

साहित्य सेवा प्रेस

१५६ छीपी टैंक, मेरठ (उ० प्र०)

पुरोवाक्

नृत्यगोपालदासेन प्रार्थितोऽहं सतां मुदे।
छन्दोभिः श्रुतिबाणाख्यै शरयू लहरीं व्यधाम्॥
खबाणाशिखरिण्योऽत्र श्रुतिभिश्चेतरैर्युताः।
सरयूभक्तिपीयूषा जीवयिष्यन्ति वैष्णवान्॥
सीतारामपदाम्भोज रोलम्बान् दास्यसंयुतान्।
एतत्काव्याब्जमारन्दं चिरं संह्लादयिष्यति॥
भो भो विरक्तमनसो रामानन्दीय वैष्णवाः।
शरयूलहरीं प्रेम्णा बुधाः गायन्तु शार्ङ्गिणः॥
श्रीरामभद्राचार्येण रामानन्दास्पदेन शम्।
भणिता भव्यवृत्ताढ्या शरयूलहरी क्रियात्॥

श्रीराघवः शंतनोतु

इति मंगलमाशास्ते

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यः

दो शब्द

जिस प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीराम के बिना भारतीय संस्कृति का स्वरूप विवेचन असम्भव है, उसी प्रकार श्रीशरयू जी के बिना श्रीअवध का और श्रीवैष्णत्व का स्वरूप विवेचन सर्वथा असम्भव है। भावुक भक्तों की मान्यता है कि जब कूटस्थ ब्रह्म भी द्रवीभूत हो जाता है तब वह श्रीगंगा जी श्री शरयू जी श्रीनर्मदा जी आदि बनकर पतित को पावन बनाता है और दानव को मानव बनाता है श्रीराघवेन्द्र सरकार की समर्चा में रचित प्रत्येक वाङ्मय में श्रीसरयू जी को सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ स्मरण करके सकलपापताप का शमन करने वाली शक्ति बताया गया है।

श्रीरामानन्द वैष्णवसम्प्रदाय की महान् विभूति एवं भारतीय आर्षवाङ्मय की महनीय मूर्ति पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज ने सभी सनातनधर्मावलम्बी महानुभावों के कल्याणार्थ प्रस्तुत 'सरयू लहरी' (लघुकाव्य) का प्रणयन किया है। यह कृति भक्तजन मानस को आह्लादित करेगी ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

भगवच्चरणानुरागी
आचार्य दिवाकर शर्मा
डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'



धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

(चित्रकूटधाम)

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

श्रीसरयूलहरी

अयोध्या सौभाग्यं विशदमथभाग्यं भगवतो
रघूणामानन्दं कमनकलकन्दं विधिभुवः।
दृगम्भोभूष्यन्दं मधुरमकरन्दं मधुमथः
सुधानिष्यन्दं ते सरयु सलिलङ्कं कलयतु ॥१॥

भावार्थ— हे सरयू माँ ! जो श्री अयोध्या का साक्षात् सौभाग्य तथा श्रीमन्नारायण का भी निर्मल भाग्य है जो रघुवंशी महाराजाओं का आनन्दस्वरूप तथा ब्रह्मपुत्र श्रीवसिष्ठ का निर्मल कल्पनामय कन्दमूल है, जो मधुसूदन भगवान् नारायण के नेत्र-कमल से पिघला हुआ मधुरतम मकरन्द है, ऐसा अमृतद्रव रूप आपश्री का निर्मल जल समस्त संसार के लिये दिव्य सुख धारण करे अर्थात् स्नान पान करने वालों को सदैव मंगल प्रदान करता रहे ॥१॥

श्रुतीनां तात्पर्यं तमिह रघुवर्यं धनुरिषुम्
दधानं कुर्वाणं रतिपतिममानं तनुरुचा।
घनश्यामं रामं जनदृगभिरामं निदधती
सुधा नीरे नीरे सरयु सततं त्वं विजयसे ॥२॥

भावार्थ— हे अमृतजलवाली सरयू माँ ! आप अपने दिव्य जल में वेदों के साक्षात् तात्पर्य रूप धनुर्बाणधारी, अपनी देहकान्ति से कामदेव का भी मानभंग करने वाले, भक्तों के नेत्रों को आनन्द देने वाले उन घनश्याम रघुकुल शिरोमणि, परब्रह्म श्रीराम को सदैव धारण करती हुई सभी नदियों में सदा श्रेष्ठ हैं ॥२॥

"रसो वै सः" श्रुत्या रस इति य आम्नायि भगवान् ।
रसात्मा रस्यात्मा निखिलरसमूर्तिमंधुरिपुः ।
रसेन्दोस्तस्याहो नयनरससम्भूतविभवाम्
कया वालङ्कुर्या मनुपगतनो त्वामुपमया ।।३।।

भावार्थ—हे उपमारहित श्रीविग्रहवाली सरयू माँ ! "रसो वै सः" इस श्रुति ने जिन परमेश्वर को रस रूप कहा, जो रस स्वरूप हैं तथा रसिकों द्वारा जिनके श्रीविग्रह का आस्वादन किया जाता है, जिनकी मधुर मूर्ति सम्पूर्ण रसों से युक्त है, ऐसे मधुसूदन उन रसचन्द्र भगवान् नारायण के नेत्ररस अर्थात् आँसू से ही जिनका जन्म हुआ है, ऐसी अलौकिक उत्पत्तिवाली आपको मैं किस उपमा से अलंकृत करूँ यह आप ही बताइये ।।३।।

न वा रङ्गा गङ्गा न तरलतरङ्गा तरणिजा
न चैवान्तर्नीरा पुनरवितधीरा न मुनिजा ।
न वारेवा देवार्चितसलिल सेवा किमगजा
स्त्वयान्याः सामान्या हरिधुनि तदालं तुलयितुम् ।।४।।

भावार्थ—हे भगवान् श्रीराम की अभीष्ट नदी माँ सरयू ! आपके साथ उपमा देने में न तो भगवान् नारायण में अनुरक्त भगवती गङ्गा उपयुक्त हैं, न ही सूर्यकन्या यमुना और न ही अन्तः सलिला सरस्वती योग्य हैं । आपसे उपमित होने के लिये धीर जनों की रक्षा करने वाली गौतमकन्या गोदावरी भी आपकी तुलना में नहीं आती तथा जिनका जल देवताओं द्वारा पूजनीय और सेवनीय है ऐसी भगवती नर्मदा भी यदि आपकी समता नहीं प्राप्त कर सकतीं तो फिर और दूसरी छोटी-छोटी साधारण नदियाँ आपश्री से कैसे उपमित की जा सकती हैं ।।४।।

वसन् कल्पान् कोटीर्छृतनर करोटी पुरि पुन
स्तथाभूतान् भूताधिपजिदभिपूतां मधुपुरीम् ।
व्रजेद् यावत् पुण्य तत इह निमेषार्धमुषितो
मुनीरे त्वत्तीरे शमधिकमुपैत्यर्बुदगुणम् ॥५॥

भावार्थ—हे मुनियों को प्रेरणा देने वाली सरयू माँ! करोड़ों कल्पों तक मुण्डमालधारी भगवान् शङ्कर की पुरी काशी में निवास करके साधक जो पुण्य प्राप्त कर सकता है, तथा उतने ही अर्थात् कोटि कल्पों तक भगवान् शङ्कर के विजेता योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् के श्रीचरणकमल से पवित्र मथुरापुरी में निवास करके जितना पुण्य प्राप्त कर सकता है उससे अरबों गुणों अधिक पुण्य उस व्यक्ति की आपश्री के तट पर मात्र आधे क्षण निवास करने से उपलब्ध हो जाता है। ऐसा अपूर्व है आपश्री के तट निवास का फल। संतजन कहा भी करते हैं ॥५॥

कोटिकल्प काशी बसे मथुरा लाख हजार ।
एक निमिष सरयू बसे तुलइ न तुलसीदास ॥

यमैः किं बाणाख्यैः किमुतनियमैरासनगणैः
किमुत प्राणायामैः किमुत किल वाचंयम जपैः ।
किमभ्भोगैर्योगैः किमुत तनुतापेन तपसा
यदीच्छेः सामीप्यं खरक्षिद उपास्वाथ सरयूम् ॥६॥

भावार्थ—अरे ! पाँच प्रकार के यमों तथा पाँच प्रकार के नियमों से क्या लाभ? योगशास्त्र में वर्णित ८४ आसनों की प्रक्रिया का क्या तात्पर्य? पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायामों की क्या आवश्यकता? मौन धारण करके जटिल मंत्रों के जपों से कोई लाभ नहीं? प्राणरस को खा जाने वाली अनेक हठयोग साधनाओं का क्या प्रयोजन? शरीर को तपा देने वाले कठोर तप

का कोई प्रयोजन नहीं। मित्र ! यदि खर राक्षस के शत्रु भगवान् श्रीराम की निकटता चाहते हो तो भगवती सरयू माँ की उपासना करो। उसी से तुम्हें भगवान् श्रीराम का सामीप्य मिल जाएगा। गोस्वामी तुलसीदास जी भी श्रीमानस में कहते हैं ॥६॥

जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिसि बह सरयू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।
मम समीप नर पावहिं बासा॥

शरात्त्वं निवृ̐त्ता शुफलशरसन्धायकगुरो-
र्निवृत्ता भूभोगाद्रुजित जपयोगादुरु भयान्।
प्रवृत्ता प्रोद्धर्तुं मलिनमनसोमानससरात्
ततस्त्वां विद्वांस शरयु सरयुप्राहुरनघे ॥७॥

भावार्थ—हे निष्पाप माँ सरयू ! आप स्वयं 'शु' अर्थात् ब्रह्म ही जिसका फल है, ऐसे दिव्य बाण का संसाधन करने वाले भगवान् श्रीराम के शिक्षा गुरु भगवान् श्रीवसिष्ठ जी के बाण से ही प्रकट हुईं। जप और योगों को भी रुग्ण बना देने वाले ऐसे भीषण पार्थिव भोगो से भी आप अत्यन्त निवृत्त हैं। घोर भवमय से युक्त मलिन मन वाले जीवों का उद्धार करने के लिए ही आप वसिष्ठ जी के बाण के द्वारा बनाए हुए मार्ग से मानस सरोवर में से उद्‌गत हुईं। इसलिए विद्वान् लोग आपको तालव्य और दन्त्य इन दोनों माध्यमों 'शरयू' तथा 'सरयू' कहकर संबोधित करते हैं ॥७॥

हरस्यंहोराशिं सलिलवपुषा तालुनिगता
भिनत्स्यागो दन्तान् सरयु इति सद्भीभिरुदिता।
ततस्त्वां तालव्यात् पुनरपि च दन्त्यात् पदविदां
जगुर्ज्ञेयां ध्येयां शरयु सरयु प्रोज्ज्वलधियाम् ॥८॥

भावार्थ—हे माँ ! आप जल के रूप में जब किसी के तालु को स्पर्श करती हैं तभी उसकी समस्त पापराशि को समाप्त कर देती हैं, और जब किसी के द्वारा सरयू कहकर दन्त्य सकार के माध्यम से दाँतों द्वारा उच्चरित होती हैं उसी समय आप उच्चारणकर्ता के अपराधों के दाँत तोड़ देती है। इसलिए अत्यन्त निर्मल बुद्धि वाले महापुरुषों द्वारा जानने तथा ध्यान करने योग्य आपश्री को हम जैसे पदशास्त्र व्याकरण के वेत्ता तालव्य शकार के माध्यम से शरयू तथा दन्त्य सकार के माध्यम से सरयू कहकर अभिहित करते हैं ॥८॥

शरानित्यं यस्मिन्नवितथ शरं ब्रह्मविरजं
घनश्याभं रामं पयसि परिपूर्णं प्रवहसि ।
शरं जीवात्मानं हर इह शरे योजयसि यत्
ततो युक्तं श्रुत्या जनान शरस्यूत्वं जगदिषे ॥९॥

भावार्थ—हे माँ ! जिनके तूणीर में निरन्तर बाण विद्यमान रहते हैं ऐसे अमोघ शरों वाले रजोगुण से रहित घनश्याम परिपूर्णतम परब्रह्म भगवान् श्रीराम को आप अपने जलधारा प्रवाह में निरन्तर प्रवाहित करती रहती है तथा कठोपनिषद् की दृष्टि से बाण रूप जीवात्मा को प्रणव के वाच्य बाणधारी भगवान् श्रीराम के चरणों में संयुक्त करती रहती हैं, इसलिए उचित ही भगवती श्रुति के द्वारा आप अनादिकाल से शरयू कहकर संबोधित की जाती रहती हैं। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है ॥९॥

शरयूः सिन्धुरूर्मिभिः

रसौ वै ब्रह्मेऽयं तदिह सगुणं सत्सरमभूत्
तदेव त्वं धत्से नृपशिशुमयं वारि विमलम्
सरोज्ञानध्यानं निजजलरतेराशि रुचिरे
ततो युक्तं प्रोक्ता स्मृतिभिरभियुक्तैश्च सरयूः ॥१०॥

भावार्थ :—हे भगवती ! श्रुति ने जिस ब्रह्म को स्तुतियोग्य तथा 'रसो वै सः' मन्त्रखण्ड से रसरूप कहा, वही निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर 'रस' से उलटकर 'सर' बन गया। उसी 'सर' शब्द के वाच्य दशरथराज के बालक रूप परब्रह्म श्रीराम को आप धारण भी करती हैं और बड़ी बहन के सम्बन्ध से पोषण भी। आप ज्ञान और ध्यान का सरोवर भी प्रदान करती हैं, अपने जल में भक्ति रखने वाले महानुभावों को। इसलिए स्मृतियों एवं अभियुक्त पूर्वाचार्यों ने आपको उचित ही 'सरयू' सम्बोधन किया है ॥१०॥

शरं यत्संसारं पदविनततो यावयसि यत्
तथा यौषिध्याने स्वजनहृदये राघवशरम् ।
रटन्ती-खेलन्ती हरि हरि हरीति प्रतिपदम्
समाश्लिष्यायोध्यां वहसि विरुदं लोकवरदम् ॥११॥

भावार्थ—हे भगवती सरयू ! आप अपने चरणसेवकों के हृदय से संसाररूप बाण को दूर करती हैं, तथा अपने भक्त के हृदय में उसके ध्यान के माध्यम से श्रीराघवेन्द्र सरकार के बाण को स्फुरित करती रहती हैं। इसीलिए श्री अयोध्या को आलिङ्गन करके खेलती हुई तथा सतत अपनी धारा की संस्कृति से हरि-हरि-हरि शब्द का उच्चारण करती हुयी आपश्री सरयू माँ लोकवन्दित यश को धारण कर रही हैं जिससे यह संसार अनादिकाल से अपने मनोवांछित वरदान प्राप्त करता आ रहा है ॥११॥

सुकेते साकेते निरुपधिनिकेतेनिरवधौ
लसत् सीतारामे भवभयविरामे निरुपमे ।
उदीच्यां राजन्ती रजतमहसा याच विरजा
कुमंद्बोध्यायोध्या प्रियसहचरी सा च शरयूः ॥१२॥

भावार्थ—सुन्दर पताकाओं से सुशोभित तथा निष्कपट

श्रीवैष्णव महानुभावों के दिव्य गृहों से मण्डित एवं परिपूर्णतम परब्रह्म श्रीसीताराम जी की नित्य उपस्थिति से शोभायमान ऐसे भवभय के विरामस्थानरूप निरुपम श्रीसाकेतलोक में भगवान् श्रीसीताराम जी के निवास से उत्तरदिशा में जो चाँदी के समान श्वेत जल से युक्त विरजा नामक नदी विराजमान है वही वेद-बोद्धयाश्रीअयोध्या की प्रिय सहचरी बनकर श्री शरयू के रूप में इस धराधाम में आयीं ॥१२॥

स्रवन्ती दीव्यन्तीरिपु तत जनिस्वान्त सरसो
द्रवन्ती दीव्यन्ती शशिकरजलैर्जह्नुतनयाम् ।
अवन्ती दीव्यन्ती विषमविपदो जीवनिकराम
प्लवन्ती दीव्यन्ती दिविजसरितं भासि सरयू ॥१३॥

भावार्थ—हे माँ सरयू ! आप कामारि शङ्कर के पूज्य पिता ब्रह्मा के मन से उत्पन्न मानस सरोवर से प्रकट होती हुई अपनी लोल तरङ्गों से क्रीड़ा करती हुई, जह्नु कन्या भगवती गङ्गा की ओर प्रवाहित होती हुई, तथा स्वयं भी भगवदानन्द से आनन्दित होती हुई, चन्द्रकिरण जैसे शुभजल से विराजमान होकर कोटि-कोटि जीवों विषम विपत्ति से रक्षा करती हुई एवं अठखेलियाँ करती हुई तथा अपने पुण्यातिशय से देवनदी गंगा को भी जीतने की इच्छा करती हुई अलौकिक रूप से विराजित हो रही हैं। ॥१४॥

समाम्नाता वेदे गलितभवखेदेऽथ बहुशः
स्मृता स्मार्तैरार्तैर्विनतवचनैः कीर्तितपदा ।
मुहुर्गीता प्रीता भजनरसिकैर्भावितकलितम्
सरिद्वेषा सैषा विलसति विभोः कापि करुणा ॥१५॥

भावार्थ—संसार का खेद नष्ट करने वाले अपौरुषेय वेद में

भगवान् की जिस करुणा का बारम्बार अभ्यास किया गया है तथा अठारहों स्मृतियों में जिसका बहुशः स्मरण किया गया है एवं आर्त भक्तों द्वारा अनेक विनम्र वचनों से परमेश्वर की जिस करुणा का संकीर्तन किया गया है भगवान् की जो करुणा कादम्बिनी भगवत् प्रेमी भजन रसिक महानुभावों द्वारा भक्तिपूर्वक पुनः पुनः गायी गयी है, वही भगवान् श्रीराम की कोई अनिर्वचनीय अलौकिक करुणा ही नदी का वेष धारण करके इस समय माँ सरयू के रूप में सुशोभित हो रही है क्योंकि शिवजी के ताण्डव से करुण हुए भगवान् नारायण के नेत्रों से प्रवाहित जल ही तो सरयू है ॥१५॥

हसन्तीं स्वर्गङ्गां तरलिततरङ्गां स्वसुकृतै
र्लसन्तीं वानीरैस्तटकृतकुटीरैर्मुनिगणैः ।
वसन्तीं संवासं सुरनुतनिवासे हरि पुरे
न सन्तीहामुष्मिन् जननि भवतीम् एभि दधताम् ॥१६॥

भावार्थ—हे माँ सरयू ! अपने पुण्यों से तरलतरङ्गों वाली आकाश गङ्गा की भी हँसी उड़ाते हुए तथा अपने किनारों पर लगे हुए बेत के वृक्षों एवं अपने तीरों पर कुटिया बनाकर रह रहे मुनि-गणों से सुशोभित होती हुई एवं देवताओं के द्वारा नमनीय श्रीअयोध्या में नदी रूप से सतत निवास करती हुई ऐसी महा-महिमामयी आपश्री सरयू माँ को जो पूर्णरूप से गा सकें ऐसे लोग इस मर्त्यलोक तथा परलोक में नहीं हैं ॥१६॥

विनश्यत्पङ्काङ्का प्रकशितकलङ्का पदजुषाम्
विराजच्छीलाङ्का विजितहरिणाङ्का तनुरुचा ।
लसन्मुक्ताम्भोऽङ्को धृतगुणकरंका कमलिनी
वृषाङ्केशाङ्घ्र्यङ्का हरिधुनि विशङ्का विजयसे ॥१७॥

भावार्थ—हे भगवान् श्रीराम की पूज्य नदी भगवती सरयू !

आप अपने भक्तों के पापपंक तथा सभी कलङ्क नष्ट कर देती हैं आपके भीतर शील रूप पताका वाले भगवान् श्रीराम विराजते हैं। आपने अपने शरीर की श्वेतकान्ति से चन्द्रमा को जीत लिया है। आपका जल शुभ्र मुक्ता के समान निर्मल है। आपने दिव्य गुणों का पिटारा धारण किया है। आप देवताओं के कमलों से युक्त हैं और आप समस्त शङ्काओं से रहित एवं सबसे श्रेष्ठ होकर विजयिनी हो रही हैं ॥१७॥

क्वचिद्दोलालोला क्वचिदपि तरङ्गैस्तरलिता
क्वचित्सत्कल्लोला ध्वनिविचितवारान्निधिरवा।
क्वचित् खेलाहेला जवदलित शैलेन्द्र शिखराः
लसल्लोला बाला प्रकृतिरथकैशोरचपला ॥१८॥

भावार्थ—यह भगवती सरयू कहीं पर हिंडोले की भाँति थोड़ी-थोड़ी चंचल दिखती हैं तो कहीं अपनी तरङ्गों से तरल हो जाती हैं, कहीं ऊँची लहरों की ध्वनि से सागर गर्जन को भी फीका कर देती हैं, कहीं तो अपनी सहज क्रीड़ा में अवज्ञापूर्वक सहज जल प्रवाह के वेग से बड़े-बड़े पर्वतों के शिखरों को भी तोड़ डालती हैं। इस प्रकार वे अपनी अनेक चंचल लीलाओं से सदैव गतिशील रहती हैं, क्योंकि बालाओं की प्रकृति प्रायः किशोरावस्था में कुछ चंचल हो जाती है ॥१८॥

क्वचिद्धीरा धीरार्चित विमलनीरा निरुपमा
क्वचिल्लोलन्नीरा मलयित समीराञ्चित् चितिः।
क्वचित्तीरा नीराजित मुनिकुटीरा भगवती
प्रकृत्या गम्भीरा लसतिचरितैरार्यललना ॥१९॥

भावार्थ—कहीं पर भगवती सरयू स्थिर जल वाली दिखती हैं, उनके जल शरीर का धीरजन पूजन किया करते हैं। कहीं पर

आपका जल कुछ हिलता दिखता है जिससे उनका तटवर्ती मलय-मारुत मानवीय चेतना को सक्रिय कर देता है, कहीं पर भगवती सरयू के तट पर की जा रही आरती से मुनियों के कुटीर भी जगमगाते रहते हैं। इस प्रकार सरयू माँ के सौम्य चरित्र से यह निष्कर्ष स्पष्ट हो जाता है कि आर्य ललना कुशल गृहिणी के रूप में अपने चरित्रों से स्वभावतः गम्भीर रहकर ही सुशोभित होती है ॥१९॥

क्वचिच्छान्ता श्रान्ता विलसित वनान्ता सुवनिता
ऋतौ ग्रीष्मे भीष्मे क्षपित शष्सुषमे निजतटे।
दिवातप्यद्रेणु रविकिरण पीताल्पसलिला
नमस्यत्स्वर्धेनुस्तप इव नदीयं प्रतपति ॥२०॥

भावार्थ—कहीं शान्त तरङ्गों वाली अश्रान्त अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न प्रवाह से युक्त तथा अपनी प्रभा से वनप्रान्त को सुशोभित करने वाली भयङ्कर ग्रीष्म ऋतु में भी भक्तों के उन्मत्त काम को नष्ट करने वाले ऐसे श्रेष्ठ तट पर दिन में धूप से चिलचिलाती बालुका से युक्त तथा सूर्य की किरणों से जिनका जल पी लिया गया है, ऐसी नमस्कार करने वालों के लिए कामधेनु के समान यह नदी भगवती सरयू तप करती हुई सी प्रतीत होती हैं ॥२०॥

क्वचित्कुञ्जे गुञ्जन् मुनिमधुपपुञ्जे गहनतः
शनैर्यान्तीरान्ती हरिचरणपङ्केरुह रतिम्।
निमज्जद्भ्योऽभीतिं भजमरसरीति रघुपते-
र्बुधैर्गीताप्रीता लसति वनदेवीव सरयूः ॥२१॥

भावार्थ—कहीं-कहीं मुनिरूप भ्रमरों के गुञ्जार से युक्त लताओं के झुरमुट में वन के अन्तराल से धीरे-धीरे बहती हुई अपने जल में निमज्जन करने वाले महानुभावों को संसार से

निर्भीकता परमात्मा के चरणारविन्द में भक्ति तथा श्रीराघव सरकार के भजन रस की रीति प्रदान करती हुई विद्वानों द्वारा गीतयशस्क प्रसन्नसलिला भगवती सरयू वनदेवी जैसी दृष्टिगोचर होती हैं ॥२१॥

हरत्यंहो ह्यम्भोऽवनति रनिशं दुर्गतिमलम्
जलस्पर्शो हर्षोत्कमल कलिकां कन्दलयति ।
पयः पानं-पानं जननि पयसः संयमयति
त्वयि स्नानं-स्नानं हरिरतिरसाब्धौ जनयति ॥२२॥

भावार्थ—हे माँ सरयू ! आपश्री के जल का अधोगमन जीव की अधोगति के हेतुभूत पाप तथा उसकी दुर्गति को सतत समाप्त करता रहता है और हे माँ ! आपके जल का स्पर्श जीव के हर्षरूप उत्कृष्ट कमलकलिका को विकसित करता है। हे भगवती ! आप का पयः पान (जलपान) माता के पयपान अर्थात् दुग्धपान को नियंत्रित करता है। तात्पर्य यह है कि श्रद्धा सहित आपके जल का पान करके जीव जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है और आपके जल में किया हुआ स्नान भगवत्प्रेमामृत समुद्र में स्नान की योग्यता उत्पन्न करता है ॥२२।

चलन् क्लान्तंश्रान्तं ससमलमशान्तंमनइभम्
मुहुर्मुग्धं दग्धं भवदवदवैस्तेऽमलजले ।
सकृत्स्नात्वा ध्यात्वालभत इव पीयूष सरितम्
प्रवृष्टं सम्पुष्टं जयति सरयू स्नान महिमा ॥२३॥

भावार्थ—जो मनरूप हाथी निरन्तर चलायमान तथा भीतर से क्लांत और बाहर से श्रान्त तथा पाप से युक्त होने के कारण अत्यन्त अशान्त था। जो ज्ञान से शून्य एवं संसार की विषयाग्नि से झुलस चुका था। ऐसे मन मतंग को भी आपके निर्मल जल में

एक ही बार स्नान और ध्यान करके साधक इतना हृष्ट-पुष्ट बना देता है मानो वह मनोगज अमृत की सरिता में प्रवेश कर चुका हो। ऐसी अपूर्व सरयू स्नान की महिमा सबसे उत्कृष्ट हो रही है ॥२३॥

महाक्रूराशूरा सततमति दूरा रघुपते
विषिन्वन्ती चार्थान् परिलसदनर्थान् प्रतिपदम्।
लसत्पापा तापापहृतमति रप्येति सलिले
तवस्नात्वा शुद्धिं लसति सरयू स्नान महिमा ॥२४॥

भावार्थ—अत्यन्त क्रूर तथा विकारों के प्रति सर्वथा भीरु प्रकृति वाली कुटिल एवं श्रीराम के चरणों से अत्यन्त दूर सतत अनर्थ से भरे हुए विषयों का ही चिन्तन करती हुई भयंकर पाप से भरी हुई तापों से नष्ट हुई बुद्धि भी आपश्री के जल में स्नान करने मात्र से परम शुद्धि को प्राप्त कर लेती है। ऐसी सरयू माँ की स्नानमहिमा सर्वत्र शोभित हो रही हैं ॥२४॥

वसन्मानं ज्ञानाम्बुजदलकृपाणं मलमयम्
विनश्यन्निर्वाणं भवित भव बाणं बलरिपुम्।
दुरन्ताहङ्कारं भवनिधि मथाम्भोघटभवः
पिबत्यद्धैवारादहह शरयू स्नान महिमा ॥२५॥

भावार्थ—जिसमें निरन्तर अभिमान रहता है तथा जो ज्ञान-कमलदल को नष्ट करने के लिए तलवार जैसा है। जिससे मोक्ष-सुख नष्ट होता है और जहाँ संसार के दुःखबाणों की पूजा होती है। ऐसे कलिमलयुक्त अन्त रहित अहंकार संसार सागर को आप श्री सरयू माँ का जलरूप अगस्त्य अत्यन्त शीघ्रता से पान कर लेता है। अहो अपूर्व है सरयू जी के स्नान की महिमा ॥२५॥

मुधामायावित्तं प्रभुपदनिवृतं शठमयम्
विसर्पत् संसारे प्रतिपदमसारेऽनुनिमिषम्।
मुहुर्भ्रामंभ्रामं गतभयविरामं तव पयः
सुखं चित्तं ध्यात्वा वशति शरयू स्नान महिमा ॥२६॥

भावार्थ—झूठी माया ही जिसका धन है। जो सर्वथा भगवान की चरणों से दूर रहता है। जिसका स्वभाव शठरू है। जो सार रहित संसार में पग-पग पर क्षण-क्षण फिसलता रहता है तथा जो सदैव भटकता-भटकता कभी भी भय से विराग नहीं लेता। ऐसा अशान्त चित्त भी आपके जल का ध्यान करके सुखी हो जाता है। सरयू स्नान की महिमा कान्तिमती हो रही है। यहाँ "वश्कान्तौ" धातु से आचार में 'क्विप्' प्रत्यय से 'वशति' शब्द निष्पन्न किया गया है ॥२६॥

द्विजानां वेदानां शिशु गुरुसुराणामथगवाम्
नृणामादृत्यानां परिभवभव हिंसनकृतम्।
महापापं तावद् व्यथयति न यावन्तव वनम्
नमन्भूर्ध्ना धत्ते विमलशरयूस्नान महिमा ॥२७॥

भावार्थ—ब्राह्मणों, वेदों, बालकों, देवताओं, गुरुजनों, गायों तथा आदरणीय मनुष्यों के अपमान से उत्पन्न हुआ एवं उनकी हिंसा से समुदित हुआ भयंकर पाप प्राणी को तभी तक व्यथित करता है जब तक वह आपश्री के जल को प्रणाम करके सिर पर नहीं धारण करता। धन्य है विमल सरयू के स्नान की महिमा ॥२७॥

उदस्यन्नौदास्यं पुनरपि च दास्यं खलकले-
र्निरस्यन्नैराश्यं निचितमथलास्यं त्रिजगताम्।
हरन्हारंहारं विगलितविहारं हरिमताम्
समुत्कर्षन्हर्षं विशद शरयू नीरमहिमा ॥२८॥

भावार्थ—उदासीनता तथा दुष्ट कलिकाल को दास्य समाप्त करती हुयी तथा जीवों की निराशा एवं तीनों लोकों में व्याप्त विषयलास्य का निरसन करती हुयी परमभागवतों के भावनाओं का हरण करने वाले तथा साधनाश्री को चुराले वाले श्रीवैष्णवोचित भजनानन्द रूप विहार को नष्ट करने वाले ऐसे मोह का हरण करने बाली एवं भजनानन्दियों के हर्ष का उत्कर्ष बढ़ाने वाली निर्मल सरयू जल की महिमा अपूर्व है ।।२८।।

अपूर्वं प्रेमौर्वं भवजलनिधेः सन्तरलयन्
खरारातेर्भक्तिं श्रितजगदसक्ति प्रबलयन् ।
मनोग्रावद्रावं कलितमृदुभावं सुबलयन्
मतिम्मान्यां कुर्वन्नहह शरयूवारि महिमा ।।२९।।

भावार्थ—अहो ! क्या अपूर्व है सरयू जल की महिमा, जो संसार सागर को खोखने के लिये अपूर्व प्रेमरूप वाडवानल को गतिमान कर देती है । जो संसार की आसक्ति को समाप्त करने वाली भगवान् श्रीराम की भक्ति को प्रबल करती है, और जो मन रूप पाषाण को पिघला देने वाले कोमल भगवद्भाव को शक्तिमान बनाती है या ससार में फँसी हुई बुद्धि को भगवद्भजन से माननीय बना डालती है ।।२९।।

छिनन्त्याशापाशं भवभयविनाशं वितनुते
भिनत्त्यागोयूथं हृतमलवरूथं पदजुषाम् ।
हरत्यम्भोरङ्गं धृतधरणिजारङ्गमनिशम्
वहन्वारारामं सुधति शरयूनीर महिमा ।।३०।।

भावार्थ—भगवती सरयू जल की महिमा साक्षात् अमृत के समान है जो आशापाश को काटकर फैंक देती है, तथा जो भव भय का विनाश कर डालती है । अपने चरण सेवकों के मलवरूथ

का नाश करती हुई अपराध समूहों का नष्ट कर डालती है तथा जो भगवान् श्रीसीतापति के अविचल अनुराग को धारण करती हुई पापों के समूह को भी कुचल डालती है और जो अपने जल के प्रवाह से भक्तों के हृदय में भगवान् श्रीराम को भी प्रविष्ट करा देती है ॥३०॥

न चोत्सर्गं स्वर्गं न जित रिपुवर्गं महिसुखम्
न वात्रैय्यावर्गं न पुनरपवर्गं निरवधि।
न वा रामा रम्या विबुधगणनम्या तव पुनः
पिबन् पाथोनाथस्तृणमिव कदाचिद् गणयति ॥३१॥

भावार्थ—हे भगवती सरयू ! जो आपका अमृतमय जल पी लेता है, वह अनाथ अर्थात् अकार के ही वाच्य भगवान् श्रीराम को ही अपना नाथ मान लेता है, वह श्रेष्ठ रचना वाला स्वर्ग हो या निष्कण्टक पृथ्वी का सुख। त्रयि अर्थात् अर्थ, धर्म, कामना वर्ग हो या निःसीम मोक्ष। चाहे देवताओं द्वारा प्रणम्य सुन्दरी नारियाँ हों या संसार के समग्र सुख, किसी को भी आपके जल की तुलना में तृण के समान भी नहीं गिनता।

कदादर्शं दर्शं लसद्लघुहर्षं तव रुचिम्
वसानः कौपीनं हृदयमथलीनं हरिरतौ।
सनीरं कुर्वाणो नयनमथ बाणाङ्कित हरिम्
स्मरंस्तीरे धीरः शरयु तवनेस्यामि दिवसान् ॥३२॥

भावार्थ—हे माँ सरयू ! मेरे जीवन में वह क्षण कब आएगा जब परम प्रसन्नता के साथ आपकी शोभा बार-बार देखकर केवल कौपीन धारण करके अपने मन को भगवद् रस में लीन करता हुआ आँखों में प्रेमाश्रु भरकर बाणधारी श्रीराम का स्मरण करते हुए शान्त मन से आपके ही तट पर अपने दिनों को क्षणों की भाँति बिता सकूँगा ॥३२॥

कदाहं कालिन्दी जलकमल कन्दाभ मनुजै-
श्चरन्तं त्वत्तीरे शिशिरित समीरे शिशुतनुम् ।
दृशापश्यन्रामं विजित शतकामं तनुरुचा
मुहुश्चुम्बं-चुम्बं निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।३३ ।

भावार्थ—हे माँ सरयू ! मेरे जीवन में वह क्षण कब आएगा जब मैं शीतल वायु से युक्त आपश्री के तट पर तीनों भाइयों सहित खेलते हुए यमुना जल, कमल तथा बादल के समान सुन्दर शरीर की कान्ति से कोटि-कोटि कामदेवों को जीतने वाले, शिशु रूप श्रीराम को अपनी आँखों से देखता हुआ उन्हें बार-बार चूम-चूम-कर अपने दिनों को क्षण की भाँति बिता सकूँगा ।।३३।।

न याचे वैधात्रं सुरपति पदं नो पशुपतेः
न वा याचे नाकं न च विविधशक्ति नृभुवनम् ।
न वाञ्छामि स्वर्गं न पुनरपवर्गं हरि धुनिः
मनो मे त्वत्तीरे श्रिततृणकुटीरे स्पृहयते ।।३४।।

भावार्थ—हे माँ सरयू ! मैं ब्रह्मपद, इन्द्रपद तथा शिवपद भी नहीं चाहता । हे माँ ! मैं स्वर्ग और अनेक ओषधियों से समृद्ध पृथ्वी लोक भी नहीं चाहता । हे श्रीराम की नदी । मैं और अपवर्ग भी नहीं चाहता, अब तो मेरा मन घास-फँस की कुटीर बनाकर आपश्री के तट पर निवास के लिए ही स्पृहा कर रहा है ।।३४।।

अपूर्वे पूर्वेषां मखलसदपूर्वे मखवताम्
सुरूपे सद्रूपे क्रतुकलितयूपे क्षिति भुजाम् ।
महाभागे भागे भवभवविभागे भगवति
द्रुते पद्माक्षाक्षणः क्षपय मम हृच्क्षप ममताम् ।।३५।।

भावार्थ—हे लोकोत्तर व्यक्तित्व वाली सरयू ! हे याज्ञिकों के यज्ञ के पुण्य से मण्डित, हे शोभनरूपसम्पन्न, हे ब्रह्मरूपिणी, हे

याज्ञिक नरेशों के यज्ञस्तम्भों से सुशोभित तट वाली, हे महाभागा, हे आभामयी, हे संसार के कल्याण विभागों से सम्पन्न, हे भगवान् विष्णु के श्रीनेत्रारविन्द की मकरन्दभूते, हे भगवती सरयू आप मेरे हृदय में वर्तमान अज्ञानरात्रि सम्बन्धिनी ममता का कृपया क्षपण अर्थात् विनाश करिये।

अनाथानांनाथो जननि तव पाथोऽमृतमयम्
अनीशानामीशा त्वमसि जगदीशार्चितपदा।
अशक्तानांशक्तिस्त्वमसि हरिशक्तिप्रणयिनी
निराधाराधारोऽधिजगदवतारस्तव शुभे ॥३६॥

भावार्थ—हे माँ! आपका अमृतमय जल ही अनाथों का नाथ है जगत के ईश्वर श्रीराम के द्वारा आपके श्रीचरणों की पूजा की गयी है। इसलिए आप अनीश अर्थात् असमर्थों की भी ईश्वरी हैं। आप हरिशक्ति सीता जी की सहचरी होने के कारण शक्तिहीन प्राणियों की भी शक्ति हैं। आपका यह जलावतार निराधारों का भी आधार है ॥३६॥

अमुष्मिन् कान्तारे विलसित विकारेऽधिजनुषो
दुराशा कूपारे विगलितविचारे विचरतः।
असारे संसारे सरयु सरतो मे विहरतः
कलङ्कं मृत्पङ्कं जननि तव पङ्कः क्षपयतु ॥३७॥

भावार्थ—हे माँ सरयू! जो वन के समान भयङ्कर है तथा जिसमें विकार ही शोभित होते हैं। जो दुराशा का महासागर है और जिसके चिन्तन से श्रेष्ठ विचार समाप्त हो जाते हैं ऐसे असार संसार में जन्म लेकर फिसल-फिसल कर विचरते हुए मुझ दास के भगवद्विरोधी चिन्तन रूप, भजन के कलङ्क तथा पृथ्वी की आसक्ति से जनित कीचड़ को आपके भीतर वर्तमान पङ्क ही समाप्त करे ॥३७॥

भजन्त्वेके गौरीम् गणपमपरे शम्भुमितरे
रमानाथं केचिद् स्थिरमन इहान्ये दिनकरम्
अनन्योऽहं धन्यो रघुपतिपदाम्भोज विगलन्
मरन्दाङ्काकाङ्क्षां सततमजपौत्रीमथ भजे ॥३८॥

भावार्थ :—कुछ लोग पार्वती जी का भजन भले ही करें, कुछ लोग भगवान् शंकर को भजते हों तो भजें, कुछ लोग गणपति अथवा भगवान् नारायण अथवा सूर्यनारायण का भले ही स्थिर मन से उपासना करते हो परन्तु मैं तो स्वयं में धन्यता का अनुभव करता हुआ भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल के मकरन्द से मण्डित तथा परब्रह्म के दिव्य श्रीवत्सलाञ्छन से चिह्नित भगवान् ब्रह्माजी की पौत्री सरयू माता का ही अनन्य भाव ने सतत चिन्तन करता हूँ ॥३८॥

न जाने गौरीशं न पुनरवनीशं खगगतिम्
न हेरम्बं शाम्बं न जगदवलम्बं हरिहयम्
न चैवान्यान्देवान् श्रितबिविधसेवान्मुनिसुते
अहन्तु त्वां जाने हरिनयनजां जाह्नविनुताम् ॥३९॥

भावार्थ :—हे मुनिवसिष्ठ की पुत्री सरयू ! मैं न तो गौरीपति भगवान् शंकर को जानता हूँ और न ही पृथ्वी के स्वामी भगवान् नारायण को न तो मैं श्री पार्वती सहित भगवान् गणेश को जानता हूँ और न ही जगत के अवलम्ब हरे घोड़ों वाले भगवान् सूर्य को अनेक सेवाओं की अपेक्षा करने वाले अन्य देवताओं को भी मैं नहीं जानता मैं तो केवल गंगाजी की भी वन्दनीय भगवान् विष्णु के नेत्रकमल से प्रकटी हुयी आपश्री सरयू माँ को ही जानता हूँ ॥३९॥

जपन्त्वेके कामं प्रणवमिह वेदार्पितधियो
रटन्त्वन्ये धन्या विबुधगणमान्याः श्रुतिततीः ।

पठन्त्वेके श्लोकान्गलित भवशोकान्सुखमहम्
सदा श्रद्धायुक्तः सरयू शरयू प्राञ्जलिगृहे ।।४०।।

भावार्थ:—भले ही कुछ लोग वेदों में बुद्धि लगाकर प्रणव का जय किया करें देवताओं द्वारा मान्य अन्य लोग भले ही स्मृतियों को रटें तथा इससे अतिरिक्त संसार के भय शोकों को नष्ट करने वाले आर्ष स्तोत्र श्लोकों को भले ही कुछ लोग पढ़ा करें परन्तु मैं तो श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर हाथ जोड़कर सरयू-सरयू ही रटा करता हूँ ।।४०।।

समुद्धर्तुं दीनान्जगदुदधिमीनान्कुमनसः
सुखीकर्तुं लोकं कलितजनशोकं श्रितभयम् ।
समाहर्तुं रामांघ्र्युदजरजः आयाहि विरजे
रजोरातुं भूमेराधि जगति साकेत सदनात् ।।४१।।

भावार्थ—जो साकेत लोक में विरजा नदी नाम से प्रसिद्ध हैं वही आप संसार सागर के मछली बने हुए दीन जनों का उद्धार करने के लिए लोगों के शोक से युक्त भय व्याप्त इस मर्त्यलोक को को सुखी करने के लिए भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल के पराग को अपने हृदय में समाहित करने के लिए तथा पृथ्वी का रजोगुण दूर करने के लिए ही इस जगत में सरयू रूप से अवतरित हुईं ।।४१।।

अयोध्याभामिन्याः सितकुसुम सीमन्त सुषमा
भुवः श्रीभारत्या गुणगणित गम्भीर गरिमा ।
खरारातिप्रेम्णः प्रथित प्रथिमालूनलघिमा
नदीनां सम्राज्ञी जयसि सरयूर्मञ्जु महिमा ।।४२।।

भावार्थ—हे सरयू माता ! आप अयोध्यारूपिणी सुलक्षणा महिला की शिरोलङ्काररूपा श्वेत पुष्पमय सीमन्त की शोभा हैं।

आप भारतभूमि की वह गम्भीर गुणगरिमा हैं जिसे भगवती शारदा गाया करती हैं आप लघुता को दूर करने वाली श्रीरामप्रेम की प्रसिद्ध प्रतिष्ठा हैं तथा आप नदियों की सम्राज्ञा। एवं महामहिमा से मण्डित हैं आपकी जय हो ॥४२॥

तवोर्मिर्भक्त्युर्मिर्मम भव कदुर्मीः कदयतु,
तवाम्भः पापाम्भः प्रसभमभयेमेऽपनयतु।
तवोसारोऽसारं हरतु मम संसारमशुभम्
तवोद्धाराधारा मम विषयधाराः प्रधमतु ॥४३॥

भावार्थ—हे माँ सरयू श्रीरामभक्ति की लहर से युक्त आपकी लहर हमारी जन्म-मरणादि छहों दुष्ट उर्मियों को समाप्त कर दें। हे अभयदात्री आपका निर्मल जल मेरे शोक जल को दूर करें। हे **माँ**! आपका प्रवाह मेरे अशुभ असार संसार को हरण कर ले तथा उद्धार करने वाली आपकी धारा मेरी शब्दादि विषय धाराओं को ध्वस्त कर दे ॥४३॥

शठोवापापो वा धृतमलकलापो मलिनधी-
र्जड़ो वा जिह्मो वा लसदघ कदम्बो हठपरः।
खलो वा दुष्टो वा प्रतिपदमशिष्टः समभिकः
क्षणं पश्यन्नीरं भवति तव धीरो हि विमलः ॥४४॥

भावार्थ—हे माँ! चाहे कोई शठ हो या पापी, चाहे कोई मल-समूहों से युक्त हो या मलिनबुद्धि, चाहे वह जड़ हो या कपटी, चाहे वह अपराधों की राशि हो या हठी, चाहे वह खल हो या दुष्ट, चाहे वह पग-पग पर अशिष्ट आचरण करता हो या अत्यन्त कामी हो, कोई भी कितना ही बड़ा निकृष्ट कोटि का क्यों न हो पर वह एक ही क्षण आपश्री के जल का दर्शन करके धीर और निर्मल हो जाता है ॥४४॥

अये ! मातर्मातर्मयि भवतु पारुष्यमनघे
त्वयाहं क्षन्तव्यो जडमतिरनाथोऽति कुटिलः।
यदित्व मद्दोषात्भवसि समुपेक्षाकुलमना
निराधारोद्धारोदिमि कथय कस्याः पुर इह ॥४५॥

भावार्थ—हे माँ सरयू ! हे निष्पाप सलिले ! मुझ पर आपकी इस प्रकार कठोरता नहीं होनी चाहिए। मुझ जैसा जड़ बुद्धि वाला अनाथ, अत्यन्त कुटिल बालक आपके द्वारा तो क्षन्तव्य ही है। यदि आप मेरे दोष के कारण मुझ पर उपेक्षा युक्त मनवाली हो रही हों अर्थात् मुझे त्यागने का मन ही बना लिया हो तो आप ही बताइए कि सब प्रकार से निराधार मैं अब आपके अतिरिक्त किसके समक्ष यहाँ अपनी करुण कहानी रोऊँ ॥४५॥

त्वदन्या का मान्या त्रिभुवनवदान्या हरिधुनि
त्वदन्या काकञ्जाम्बक नयन कारुण्यलहरी।
त्वदन्या का धन्या रघुपतिपदाम्भोजरजसा
त्वदन्यां कां यायां शरणमरविन्दाक्षतनये ॥४६॥

भावार्थ—हे श्रीराम की वन्दनीय सरिते ! आपके अतिरिक्त तीनों लोकों में और कौन नदी इतनी दानशील है। हे सरयू माँ ! आपके अतिरिक्त और कौन कमल नेत्र भगवान् श्रीविष्णु की करुणा लहरो रूप में प्रगट हुई। आपके अतिरिक्त और कौन नदी सहस्रों वर्षों तक भगवान् श्रीराम के पदपद्म पराग से धन्यता को प्राप्त हुई। इसलिए हे भगवान् नारायण की पुत्री। मैं आपके अतिरिक्त और किसकी शरण में जाऊँ ॥४६॥

शुभे शुभ्रे शुभ्रा गदित करुणाभ्रे भगवति
भवे भद्रे भद्रार्चित गुणसमुद्रे भवभवे।
लसत्सीतारामाबिरलपुलिने नव्यनलिने
सुनीरे त्वत्तीरे जननि रघवीरं प्रकटय ॥४७॥

भावार्थ—हे माँ, हे श्वेत वर्ण वाली, हे शुभ्रा अर्थात् सरस्वती द्वारा गामी हुयी करुणा की मेघमाला से युक्त, हे कल्याणमयी, हे भद्रे! हे भद्रपुरुषों द्वारा पूजित, गुणों के महासागर कल्प हे शिवजी का भी कल्याण करने वाली, हे भगवान् श्रीसीताराम जी से सुशोभित सघन तटों वाली, हे नवान कमलमण्डिते, आप करुणा करके श्रेष्ठ जल से अलंकृत अपने तट पर श्रीराघव सरकार को प्रकट कर दीजिए ॥४७॥

सदा मादृस्तीरे तव महितनोरेऽनुजसुहृत्
प्रवारोऽचंद्धारो नवघनशरीरो विहरति।
दधानं तूणीरं तमथ रघुवीरं लघुधनुश्-
शरारामं रामं नयन पथमानीकय मम ॥४८॥

भावार्थ—हे पूजनीय सलिले माँ सरयू! आपके तट पर श्रीभरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न तथा मित्रों से युक्त तथा धीर पुरुषों द्वारा पूजित, नवीन बादल के बादल के समान श्रीविग्रह वाले श्रीहरि सदैव विहार करते रहते हैं। निषंग धारण किए हुए, छोटे-छोटे धनुष-बाण से खेलते हुए उन रघुवीर भगवान् श्रीराम को आप मेरे नेत्र पथ पर ले आएँ ॥४८॥

मनुष्यश्चन्मातस्तव शुभतटे कोसलगतः
पशुश्चद् भूयास जननि तव तीरे तृणचरः।
अथोतिर्यग्योनिस्तव पुलिनभू नीडनिलयो
यदि स्याम् मत्स्योऽहं सततं सरयूनीरनिभृतः ॥४९॥

भावार्थ—हे माँ! यदि मैं मनुष्य बनूँ तो अयोध्या में जन्म लेकर आपके तट पर भ्रमण करूँ। यदि मैं पशु बनूँ तो आपके तट की कोमल-कोमल घास चरूँ। यदि मैं कोई पक्षी बनूँ तो आपके ही तट पर उत्पन्न हुए वृक्ष पर अपना घोंसला बनाऊँ। यदि मैं मछली बनूँ तो आपके ही जल में आनन्द करता रहूँ ॥४९॥

श्रये धीरस्तीरं पुनरमृतनीरं भयहरम्
भजेऽहं वासिष्ठीं हरिनयन सृष्टिं भगवतीम् ।
स्मरामि प्रोत्तुङ्गां रचित भवभङ्गां गिरिधरः
शरय्य वा श्रीरङ्गां मधुरमिह गायामि लहरीम् ।।५०।।

भावार्थ—हे माँ सरयू ! मैं गम्भीर बुद्धि से आपके तट एवं भयहारी अमृतमय जल का श्रयण करता हूँ । श्रीमन्नारायण के नेत्र से उत्पन्न हुई वसिष्ठ तनया सरयू का भजन करता हूँ । मैं "रामभद्राचार्य गिरिधर कवि" भगवती सीताजी की रंगकेलिरूप भवभंग करनेवाली माँ सरयू की विशाल तरङ्गावली का स्मरण करता हूँ और अपने ही द्वारा पचास शिखरिणी छन्दों में प्रणीत 'सरयू लहरी' का मधुर-मधुर गान भी करता हूँ ।।५१।।

संभूता नयनाम्बुजान्मधुरिपोर्लोकं पुनानापुन-
र्निर्वृत्ता पयसा वसिष्ठ विशिखाज्जाता पुनर्मानसात् ।
याऽयोध्यां रमयस्युदारतरलैः संलालयन्ती शिशुम्
श्रीरामं भगिनीव भो भगवति त्वं श्रेयसी श्रेयसे ।।५१।।

भावार्थ—जो आप प्रथम तो भगवान् विष्णु के नेत्र से प्रगट हुईं, फिर जगत् को जल से पवित्र करती हुई वसिष्ठजी के बाण से विकसित हुईं, अनन्तर मानस सरोवर से आपका उद्गम हुआ, पश्चात् शिशु रूप राघव सरकार को बड़ी बहन के समान दुलारती हुई आपश्री आयोध्या को ही श्रेष्ठ तरंगों से आनन्दित कर रही हैं । हे भगवती ! आपका प्रत्येक क्रिया कलाप जगत् के कल्याण के लिए ही होता है ।।५१।।

नमामि सरयूमहं स्फुरदमन्द धारावलीम्
मुकुन्दनयनाम्बुज श्रुतमरन्द सद्विग्रहाम् ।
वसिष्ठमुनिकन्यकां महः लोलयन्तीं शिशुम्
तरङ्गवरदोलिका गतमिवादराद्राघवम् ।।५२।।

भावार्थ—अहो ! जो निरन्तर शिशुरूप राघव को आदरपूर्वक अपने लहरों के पालने पर झुलाती रहती हैं। ऐसी अनेक चंचल धाराओं वाली भगवान् नारायण के नेत्र कमल की मकरन्द रूप वसिष्ठ कन्या श्रीसरयू को नमस्कार करता हूँ ।।५२।।

करुणावततार वैष्णवी सरयूनाम धरा-धरामिता ।
मयि जल्पति क्लृप्त रोदने करुणार्द्राभवताद् वसिष्ठजा ।।५४।।

भावार्थ—जो भगवान् विष्णु की करुणा ही सरयू नाम धारण करके नदी रूप में धराधाम पर अवतीर्ण हुयीं तथा पृथ्वी पर आयीं वे ही अनादिकाल से करुणक्रन्दन पूर्वक विलाप करते हुए मुझ दीन पर करुणा करके पिघल जायँ ।।५३।।

इत्थं मयाऽथ सरयू पदपङ्कजश्री
श्रद्धा सुभक्ति विलसन्मनसानवद्या ।
गीतागिरिधरेण च रामभद्रा-
चार्येणरञ्जयतु वो लहरी हरीष्टा ।।५४।।

भावार्थ—इस प्रकार से माताश्री सरयू के श्रीचरणारविन्द की श्रद्धा तथा भक्ति से विलसित मनवाले मुझ "कवि गिरिधर रामभद्राचार्य" द्वारा गायी हुई निर्दोष तथा भगवान् श्रीराम को अत्यन्त प्रिय यह सरयू की भक्ति प्रदान करके आप सब श्रीवैष्णवों का रञ्जन करें ।।५४।।

इति श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर धर्मचक्रवर्ति
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य महाकवि गिरिधरोपाह्व
स्वामिरामभद्राचार्य प्रणीता श्रीसरयू लहरी ।। सम्पूर्णा ।।

श्रीराघवः शंतनोतु
दिनाङ्क ३०-१-२०००
दिन—रविवार

॥ श्रीः ॥

जीवन के पञ्चपाथेय

१. भगवान् श्रीसीताराम जी की शरणागति में प्राणिमात्र का अधिकार है।

२. हिन्दुत्वभावना एक ऐसी गंगा है जिसके स्पर्श से समस्त संसार पवित्र हो सकता है।

३. वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था ही सनातन धर्म का मूलमंत्र है।

४. जगत् को स्वभाव से जीतो प्रभाव से नहीं।

५. वैष्णवता ही मानवता की संजीवनी सुधा है।

सर्वाम्नाय अनन्त श्रीसमलंकृत श्रीतुलसीपीठाधीश्वर
धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामीश्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

(चित्रकूटधाम)